

1. पढ़क्कू की सूझ

एक पढ़क्कू बड़े तेज थे, तर्कशास्त्र पढ़ते थे,
जहाँ न कोई बात, वहाँ भी नई बात गढ़ते थे।

एक रोज़ वे पड़े फ़िक्र में समझ नहीं कुछ पाए,
“बैल घूमता है कोल्हू में कैसे बिना चलाए?”

कई दिनों तक रहे सोचते, मालिक बड़ा गजब है?
सिखा बैल को रक्खा इसने, निश्चय कोई ढब है।

आखिर, एक रोज़ मालिक से पूछा उसने ऐसे,
“अजी, बिना देखे, लेते तुम जान भेद यह कैसे?”

कोल्हू का यह बैल तुम्हारा चलता या अड़ता है?
रहता है घूमता, खड़ा हो या पागुर करता है?”

मालिक ने यह कहा, “अजी, इसमें क्या बात बड़ी है?
नहीं देखते क्या, गर्दन में घंटी एक पड़ी है?”

जब तक यह बजती रहती है, मैं न फ़िक्र करता हूँ,
हाँ, जब बजती नहीं, दौड़कर तनिक पूँछ धरता हूँ।”

कहा पढ़क्कू ने सुनकर, “तुम रहे सदा के कोरे!
बेवक्फ़! मंतिख की बातें समझ सकोगे थोड़े।

अगर किसी दिन बैल तुम्हारा सोच-समझ अड़ जाए,
चले नहीं, बस, खड़ा-खड़ा गर्दन को खूब हिलाए।

घंटी टन-टन खूब बजेगी, तुम न पास आओगे,
मगर बूँद भर तेल साँझ तक भी क्या तुम पाओगे?”

मालिक थोड़ा हँसा और बोला पढ़क्कू जाओ,
सीखा है यह ज्ञान जहाँ पर, वहीं इसे फैलाओ।

यहाँ सभी कुछ ठीक-ठाक है, यह केवल माया है,
बैल हमारा नहीं अभी तक मंतिख पढ़ पाया है।

2. बर्र और बालक

सो रहा था बर्र एक कहीं एक फूल पर,
चुपचाप आके एक बालक ने छू दिया।

बर्र का स्वभाव, हाथ लगते ही उसने तो,
उँगली में डंक मार कर बहा लहू दिया।

छोटे जीव में भी यहाँ विष की नहीं कमी है,
टीस से विकल शिशु चीख मार, रो उठा।

रोटी को तवे में छोड़ बाहर की ओर दौड़ी,
रोना सुन माता का हृदय अधीर हो उठा।

उँगली को आँचल से पोंछ-पाँछ माता बोली,
मेरे प्यारे लाल! यह औचक ही क्या हुआ?

शिशु बोला, काट लिया मुझे एक बर्र ने है,
माता! बस, प्यार से ही मैंने था उसे छुआ।

माता बोली, लाल मेरे, खलों का स्वभाव यही,
काटते हैं कोमल को, डरते कठोर से।

काटा बर्र ने कि तूने प्यार से छुआ था उसे,
काटता नहीं जो दबा देता जरा जोर से।

3. किसको नमन करूँ मैं भारत?

तुझको या तेरे नदीश, गिरि, वन को नमन करूँ मैं?
मेरे प्यारे देश! देह या मन को नमन करूँ मैं?
किसको नमन करूँ मैं भारत? किसको नमन करूँ मैं?

भू के मानचित्र पर अंकित त्रिभुज, यही क्या तू है?
नर के नभश्चरण की दृढ़ कल्पना नहीं क्या तू है?
वेदों का ज्ञाता, निगूढ़ताओं का चिर ज्ञानी है
मेरे प्यारे देश! नहीं तू पत्थर है, पानी है
जड़ताओं में छिपे किसी चेतन को नमन करूँ मैं?

तू वह, नर ने जिसे बहुत ऊँचा चढ़कर पाया था;
तू वह, जो संदेश भूमि को अंबर से आया था।
तू वह, जिसका ध्यान आज भी मन सुरभित करता है;
थकी हुई आत्मा में उड़ने की उमंग भरता है।
गंध-निकेतन इस अदृश्य उपवन को नमन करूँ मैं?
किसको नमन करूँ मैं भारत! किसको नमन करूँ मैं?

वहाँ नहीं तू जहाँ जनों से ही मनुजों को भय है;
सब को सब से त्रास सदा सब पर सब का संशय है।
जहाँ स्नेह के सहज स्रोत से हटे हुए जनगण हैं,
झंडों या नारों के नीचे बँटे हुए जनगण हैं।
कैसे इस कुत्सित, विभक्त जीवन को नमन करूँ मैं?
किसको नमन करूँ मैं भारत! किसको नमन करूँ मैं?

तू तो है वह लोक जहाँ उन्मुक्त मनुज का मन है;
समरसता को लिए प्रवाहित शीत-स्निग्ध जीवन है।
जहाँ पहुँच मानते नहीं नर-नारी दिग्बंधन को;
आत्म-रूप देखते प्रेम में भरकर निखिल भुवन को।
कहीं खोज इस रुचिर स्वप्न पावन को नमन करूँ मैं?
किसको नमन करूँ मैं भारत! किसको नमन करूँ मैं?

भारत नहीं स्थान का वाचक, गुण विशेष नर का है
एक देश का नहीं, शील यह भूमंडल भर का है
जहाँ कहीं एकता अखंडित, जहाँ प्रेम का स्वर है
देश-देश में वहाँ खड़ा भारत जीवित भास्कर है
निखिल विश्व को जन्मभूमि-वंदन को नमन करूँ मैं!

खंडित है यह मही शैल से, सरिता से सागर से
पर, जब भी दो हाथ निकल मिलते आ द्वीपांतर से
तब खाई को पाट शून्य में महामोद मचता है
दो द्वीपों के बीच सेतु यह भारत ही रचता है
मंगलमय यह महासेतु-बंधन को नमन करूँ मैं!

दो हृदय के तार जहाँ भी जो जन जोड़ रहे हैं
मित्र-भाव की ओर विश्व की गति को मोड़ रहे हैं
घोल रहे हैं जो जीवन-सरिता में प्रेम-रसायन
खोल रहे हैं देश-देश के बीच मुँदे वातायन
आत्मबंधु कहकर ऐसे जन-जन को नमन करूँ मैं!

उठे जहाँ भी घोष शांति का, भारत, स्वर तेरा है
धर्म-दीप हो जिसके भी कर में वह नर तेरा है
तेरा है वह वीर, सत्य पर जो अड़ने आता है
किसी न्याय के लिए प्राण अर्पित करने जाता है
मानवता के इस ललाट-वंदन को नमन करूँ मैं!

—रामधारी सिंह 'दिनकर'